“ सेवा ”

“ साष्टांग दंडवत प्रणाम ”

" श्री वल्लभाधीश की जय "

" श्री श्यामसुंदर श्री यमुने महारानी की जय "

" श्री गिरिराज दासत्व की जय "

" श्री पुष्टि व्रज सेव्य की जय "

“सेवा” शब्द पढ़ते ही नयन अपलक होने लगते है, नयन में आतुरता एवम जिज्ञासा के भाव जागते है। नयन में कोई स्वरुप द्रष्टि स्पष्ट होने लगती है। “सेवा” स्वर सुनते ही कर्ण सतेज और आज्ञांकित हो जाते है, ऐसे जागृत हो जाते है, जिससे सारे तन, मन और ह्रदय के हर तंतु उत्कृष्ट हो जाते है।

“सेवा” साक्षर और संस्कृत संस्कार है जो जगत के हर जीव, हर रज, हर बूंद, हर लहर, हर ज्योत, हर स्पर्श को अभिभूत, असर, और संवेदन करता है। हमारे ऋषि मुनिओं, आचार्यो, तपस्वियों, आरध्यों, संतो, प्रार्थनीओ, भक्तों, सेवकों और दासजनों ने अपने आपको इतनी सूक्ष्मता से खुद को प्रज्वल्लित, ऊर्जित, आंतरिक पवित्रता से उत्स किया है की जगत, संसार, प्रकृति, सृष्टि में कैसा भी आमूल परिवर्तन आवे पर खुद की योग्यता पर न कोई असर हो, स्पंदन हो, परिवर्तन हो।

जगत, संसार, सृष्टि, और प्रकृति के हर सिद्धांत सेवा से ही जुड़े है। सेवा से ही गति, प्रगति और परिवर्तन होता है। सेवा से ही साथ जीते है, साथ रहेते है, एक दूजे को समजते है।
बिन सेवा नहीं अखंड, नहीं एक, नहीं समान।
सेवा से ही सर्वे का हाथ - सर्वे का साथ - सर्वे का जगन्नाथ - जो सर्वे के श्रीनाथ से शिक्षात्मक, सहजात्मक, योगात्मक, मधुरात्मक होते है।

सेवा उपकार नहीं है, उपहास नहीं है, सेवा तो उपवास है।
सेवा में न कोई उच्च है न कोई नीच है, सेवा में न कोई गुरु है न कोई शिष्य है।
सेवा में न कोई ब्राह्मण है न कोई अछूत है।
सेवा में न कोई तवंगर है न कोई गरीब है।
सेवा की पर्मोध्धार पध्धती सर्वोध्धार ही करती है।
नहीं कोई गर्व है की नहीं कोई गुमान है सेवा में।
नहीं कोई आडंबर है नहीं कोई दिखावा, नहीं कोई आगे नहीं कोई पीछे।
नहीं कोई प्रथम नहीं कोई आखिर कोई भी प्रकार की सेवा में।
सेवा में है नमन, है वंदन, है प्रणाम है नमस्कार।
सेवा में सर्वे परमोत्तम सर्वे सर्वोतम।
निष्पक्ष से किया हो ऐसी हर क्रिया सेवा है, निष्कपट से किया हो ऐसी हर क्रिया सेवा है।
नहीं है सन्मान, नहीं है अभिमान सेवा में, नहीं है मान और नहीं है अपमान सेवा में।
सेवा में है आवकार, स्वीकार है परोपकार है।
सेवा में नहीं है भेंट, नहीं है न्योछावर, नहीं है सौगात, नहीं है व्यवहार।
सेवा में है केवल समर्पणता, शरणागतता।
सेवा में नहीं है भोग - उपभोग, सेवा में है उपयोग, प्रयोग - योग।
सेवा में नहीं है संग्रहता, नहीं है निजता।
सेवा में है विशालता, प्रसन्नता, पधरावता।
सेवा नहीं है खुद की या ओर की, सेवा है सर्वे की या सर्वेज्ञ की।

सेवा में नहीं है मान्यता - नहीं है रुढ़िचुस्तता।
सेवा में है द्रड़ता, नम्रता और सरलता।
सेवा में नहीं है कोई बाधा - नहीं है कोई बलिदान, सेवा में है केवल स्वतंत्रता, विशुद्धता, पवित्रता।
सेवा में है सर्वे की सामग्री - सर्वे के लिए है प्रसाद।
सेवा में है सर्वे समांतर, न कोई छोटा है - न कोई बडा है।
सेवा में न है कोई व्यवहार - न है कोई व्यापार, सेवा में है केवल त्याग - समर्पित करना।
सेवा में न है कोई नेता - न है कोई अभिनेता, सेवा में है केवल सेवक और दास।
सेवा करनी है, सिध्धानी है, रचनी है, छूनी है, परमानी है, सजानी है, लूटानी है, धरनी है, सर्जनी है।
सेवा न दर्शानी है, न कहनी है, न टिकात्मक है, न नकारात्मक है, न प्रदर्शित है, न दार्शनिक है।
सेवा न बाधात्मक है, न अपेक्षक है, न आडंबरी है, न स्वार्थक है, न प्रयोजनात्मक है।
सेवा न हेतु सभर है, न प्रयोगिक है, न आयोजनात्मक है, न मददनिश है।
सेवा मार्गसूचक है, मार्गदर्शक है।
सेवा नित्य है, निरंतर है।
सेवा का न कोई इजारदार है, न कोई मालिक है, न किसिकी सत्ता है।
सेवा न किसिका दस्तावेज़ है, न कोई पदाधिकार है, न कोई अधिकारी है।
सेवा में न कोई नोकर है, न कोई चाकर है।
सेवा में न कोई किराया है, न कोई किरायेदार है, न कोई करजदार है।
सेवा में न किसिका हिस्सा है, न किसिका हक है।
सेवा में न कोई रखेवाल है, न किसिकी संपति है।
सेवा में न किसीसे डरना है, न किसिकी सम्मति लेनी है।
सेवा न किसिका शास्त्र है, न किसिका मुद्रालेख है।
सेवा में न है मेरा, न है किसिका, सेवा सर्वेकी है।
सेवा में न कोई है गुन्हेगार , न कोई है शाहूकार।
सेवा में न है कोई हुकमी, न है कोई जोहुकमी।
सेवा में है खुमारी, सेवा में न है कोई लाचारी।
सेवा नहीं है अनिश्चित, सेवा सदा है निश्चित।
सेवा नहीं है भीतर - नहीं है बाह्य, सेवा सदा है समक्ष।
“सेवा” सानिध्य है, सहवास है, आभास नहीं है।
“सेवा” याद है, फरियाद है।
“सेवा” प्रश्न है, उत्तर है।
“सेवा” आधार है, आभार है, अभिवादन है।
“सेवा” सुसज्जित है, सुसभ्य है, सुदर्शन है।
“सेवा” सौंदर्य है, शृंगार है, सुगंध है।
“सेवा” खुदकों खुदकी पहेचान करने की रीत और प्रथा है।
“सेवा” एकाग्रता पाने की रीत और पद्धति है।

“सेवा” तन - मन - धन और जीवन को शांत और सरल करने की रीत है।
“सेवा” अपनी सलामती - अपनी आकृति है।
“सेवा” अपनी छाया - अपनी कला कृति है।
“सेवा” अपनी शिक्षा - अपना संस्कार है।
“सेवा” अपनी साक्षरता - अपनी संस्कृति है।
“सेवा” अपने तन मन को अपने आत्म के साथ जोड़ने की रीत है।
“सेवा” अपने तन मन का परिवर्तन करके आत्म के साथ मिलन है।
“सेवा” तन के रोमे रोम में विरहग्नि प्रकट करने की रीत है।
“सेवा” स्थिरता - स्थितिप्रज्ञता है।
“सेवा” आंतरिक पहेचान से बहिरमुखता को आंतरिकता जैसी परिवर्तन करने की रीत है।
“सेवा” मेरे हर एक श्वास और उछश्वाश की क्रिया में समांतरता करने की रीत है।
“सेवा” मेरे नयन द्वार खोल बंध करने की रीत है।
“सेवा” मेरे कर्णो को योग्यताके सूर सुनाके आंतरिक मे चेतन जागृत करना है।
“सेवा” मेरे अधरको अमृत रस स्पर्श करने की माधुर्यता है।
“सेवा” मेरे विश्वास का प्रतिबिंब है।
“सेवा” हर विचार और हर क्रिया कैसे करने की समज है।
“सेवा” विज्ञान - प्रज्ञान है।
“सेवा” अस्तित्व है।
“सेवा” संयोजन है।
“सेवा” पूर्णता है।
“सेवा” सूर्य - सागर - आकाश - धरती - वायु का समन्वय है।
“सेवा” दिशा है।
“सेवा” मन - चित - बुद्धि - अहंकार की कक्षा है।
“सेवा” तन को क्या क्या अंगीकार हो उसकी पहेचान है।
“सेवा” मन को स्थिरता, मन की तीव्रता, मन की आतुरता का मनोरथ है।
“सेवा” अनुभव - अनुभूति - अनुमति - अभिभूति है।
“सेवा” विशुद्ध ऊर्जा है।
“सेवा” पवित्र उर्मि है।
“सेवा” साधन नहीं प्रमयबल है।
“सेवा” आनंद है।

“सेवा” परिप्रश्न

श्रीमद वल्लभाचार्यजी ने मनुष्य जीवन की उत्कृष्टता के लिए अलौकिक संस्कृति, रीत, शिक्षा, दिशा को प्रस्थापित किया है - “सेवा”

सेवा को सामान्य रीत से पूजा, अर्चना, धर्म पारायण, विधि, शास्त्रोक्त मंत्रोच्चार, वेद वेदांत आदि क्रियाओ की रीतों की मान्यता समझते है। यह मान्यता सदन्तर अयोग्य और नासमझ है। पूजन, धर्म संस्कार विधि, शास्त्रोक्त मंत्रोच्चार, वेद वेदांत सेवा नहीं है की सेवा के कोई प्रकार नहीं है पर एक विज्ञान है, इनके हर अक्षर, स्वर, रीत, विधि में सिद्धांत है, संस्कार है, शिक्षा है, विद्या है, साक्षरता है, सिद्धि है, सार्थकता है, विज्ञान है, प्रज्ञान है। इसीलिए यह सेवा रीत एक साधन है।

“सेवा” आंतरिक ऊर्जा है।
“सेवा” आंतरिक विशुद्धता है।
“सेवा” आंतरिक पवित्रता है।
“सेवा” आंतरिक जागृतता है।
“सेवा” योग्य प्रीत है।

परिप्रश्न - संशय नहीं, अति पिसाया हुआ, अति कसाया हुआ।
परिप्रश्न - जिज्ञासा, आतुरता, तीव्रता, गहराई भरा।
परिप्रश्न - आंतरिक है।
परिप्रश्न - प्रकाशमय है।
परिप्रश्न - प्राकट्य है।
परिप्रश्न - अग्नि है।
परिप्रश्न - पिपासा है।
परिप्रश्न - प्यास है।
परिप्रश्न - परिचय है।
परिप्रश्न - पहेचान है।
परिप्रश्न - विश्वास है।
परिप्रश्न - संस्कृति है।
परिप्रश्न - पुरुषार्थ है।
परिप्रश्न - सन्मान है।
परिप्रश्न - सत्य दर्शन है।
परिप्रश्न - सत्य विवाद है।
परिप्रश्न - नहीं हार - नहीं जीत - नहीं अहम - नहीं वहेम।
परिप्रश्न - नहीं अंधश्रद्धा - नहीं अज्ञानता।
परिप्रश्न से सेवा की पहेचान - ओहह! अति अदभूत!

“ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन: ” ।।
“ श्रीमद भगवद गीता ”

“सेवा”

सेवा का अर्थ - माहत्मय - रीत - विशिश्ठ्ता - द्रष्टता - दीर्घता - श्रेष्ठता - स्पर्शता - विरहता - एकात्मता - योग्यता - साक्षरता - समन्वयता - असाधारणता - अलौकिकता - अदभूतता - सर्वोतमता - सर्वाधिक्ता जानना, समझना, स्वीकारना, जुड़ना, पहेचानना, स्पर्शना, पाना, डूब जाना, एक होना।

सेवा - हिंदू संस्कृति की श्रेष्ठ धारा, श्रेष्ठ साक्षरता, श्रेष्ठ पुष्टता, श्रेष्ठ सामर्थ्यता, श्रेष्ठ सार्थकता, श्रेष्ठ नित्यता, श्रेष्ठ निर्भयता, श्रेष्ठ निर्मलता, श्रेष्ठ सरलता, श्रेष्ठ निर्दोषता, श्रेष्ठ विशुद्धता, श्रेष्ठ पवित्रता, श्रेष्ठ सत्यता, श्रेष्ठ माधुर्यता, श्रेष्ठ परमानंद, श्रेष्ठ प्रज्ञानता, श्रेष्ठ स्वस्वरुपा, श्रेष्ठ भक्तितत्वता, श्रेष्ठ प्राक्टयता, श्रेष्ठ संपूर्णता, श्रेष्ठ प्रीतता है।

हिंदू संस्कृति के परमानंद आध्यात्मिक धरोहर आचार्यो, ऋषि - मुनिओं, महर्षिओं, ब्रह्मर्षिओ, तपस्विओं, संतो, भक्तों, सेवकों, दासों ने सेवा का सर्जन एक अलौकिक, अनोखी, अदभूत, सर्वज्ञ ज्ञानात्मक और भावनात्मक रचना प्रकटायी है। सेवा से ब्रह्मांड, जगत, सृष्टि, प्रकृति, संसार के हर प्रकार के तत्व को तनुनवत्व में परिवर्तन करके सर्वश्रेष्ठ पूर्ण परम प्रीतात्म तत्व में एकात्म करता है। ओहह! श्री वल्लभ!

सेवा से स्वभाव विजयोभवेत होता है।
सेवा से दूरिततक्ष्यो होता है - निरोध का उत्स होता है, निरोध से जगत, संसार और प्रकृति के प्रपंच का नाश होता है।
सेवा से अनन्यता की द्रढ़ता जागृत होती है।
सेवा से अनुराग की वृद्धि होती है।
सेवा से जन्म अधरण की कर्मता सुश्रुत होती है।
सेवा से जन्म और जीवन मधुर होता है।
सेवा से पुष्टि प्रीत रीत का ज्ञानात्मक और भावात्मक विरह रस का पार्दुभाव होता है।
सेवा से अज्ञानता नष्ट होती है।
सेवा से मन, तन और धन का विनियोग सर्वोच्च और सर्वज्ञ से होता है।
सेवा से परमानंद अपने तन, मन और धन द्वारे प्रकट होते है।
सेवा से परम पूर्ण पुरषोत्तम सेवक तत्व को अपनी सर्वज्ञता का सिंचन करके प्रीतामृत से एकात्म करके परम दासत्व प्रदान करते है।
सेवा से परम तत्व को अपनी विशुद्ध और पवित्र सापेक्षित स्वस्वरुप साकार प्राकट्य करके सदा परम स्वसाकार स्वरुप के साथ लीलामय रहेती है।
ओहह! कितना अदभूत!
कितना सर्वोच्च!
कितना मधुर!
कितना सर्वानंद!
“पुष्टि प्रीत सेवा”

“ सेवा तु रोम निवर्तिका ”
“ श्री वल्लभाचार्य ”

श्री वल्लभाचार्यजी की परम सूक्ष्म ज्ञानभक्ति दिर्घद्रष्टि ने अनन्य, अलौकिक, विशुद्ध, पवित्र, सात्विक, सुद्रढ़, श्रेष्ठ, आत्मीय, ज्योतिमय, विश्वसनीय, स्पर्शीय, लीलामय, एकात्मय निधि जतायी है - सेवा ।। ब्रह्मांड, जगत, संसार, सृष्टि, प्रकृति और हर तत्व को “प्रीत” करदे - सेवा ।।
“प्रीत” करना

सूक्ष्म से सूक्ष्म को शरणागत करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को दासत्व करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को तनुनवत्व करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को प्रियतम करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को गोपि करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को व्रज रज करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को श्री यमुना रस बूँद करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को श्री गोवर्धन निकुंज करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को श्री अस्ठ्सखा पुष्टि कीर्तन करदे
सूक्ष्म से सूक्ष्म को दासत्व वैष्णव करदे

“पुष्टि प्रीत सेवा” को संस्कृत और साक्षर करने हर तत्व की रचना, ब्रह्मांड की रचना, जगत की रचना, संसार की रचना, सृष्टि की रचना, प्रकृति की रचना को जानना, समझना, पहेचानना, घडना, अंगीकार करना, योगिस्थ करना, समन्वय करना, शरणागत करना और परित्याग करके हर तत्व को तनुनवत्व करके हर एक से आनंद से एकात्म होना - “सेवा” है।

ब्रह्मांड के कहीं चरित्र, जगत के कहीं चरित्र, संसार के कहीं चरित्र, सृष्टि के कहीं चरित्र, प्रकृति के कहीं चरित्र, तत्व के कहीं चरित्र, जीव तत्व के कहीं चरित्र, मानव जीवन के कहीं चरित्र, दानव जीवन के कहीं चरित्र, देव जीवन के कहीं चरित्र, दैवी जीवन के कहीं चरित्र हर जन्म और जीवन को सँवरता है, यही सँवरते सँवरते आचार्यो ने, ब्रह्मर्षिओ ने, महर्षिओ ने, तपस्विओ ने, संतो ने, भक्तो ने, ज्ञानिओ ने, वैष्णवों ने एक रीत जतायी। संस्कृत की, साक्षर की जिससे ब्रह्मांड, जगत, संसार, सृष्टि, प्रकृति और हर तत्व सुयोग्य, सुरक्षित, सुंदर, सुसज्ज, सुलय, सुरम्य, सुरंग, सुअंग, सुयोग, सुसभ्य, सुविचार, सुमन, सुगम्य, सुकर्म, सुश्रेष्ठ, सुश्रुत, सुसंग, सुप्रीत होते गये और खुद सर्वानंद होते गये। यह सर्वानंद की रीत से परमानंद पा कर परमात्म तत्व मे जुडने लगे - जो मूल परम तत्व से एकात्म होने लगे - “सेवा” ।।

बिना अहंकार कहे रहा हूँ, निर्भयता से और निडरता से कहे रहा हूँ, सलामती से कहे रहा हूँ और पुष्टि प्रीत की अनुभूति से कहे रहा हूँ - आज न पुष्टि प्रीत सेवा हो रही है और न कोई कर रहा है। श्री वल्लभाचार्यजी, श्री गोपियोंजी, श्री अस्ठ्सखाजी ने ही "पुष्टि प्रीत सेवा" संस्कृत, साक्षर और एकात्म की है।

भारत वर्ष के कहीं स्थली पर कहीं प्रकार की सेवा निधि हो रही है। हर प्रकार की सेवा निधि की सैद्धांतिकता, पवित्रता, शुद्धता, श्रेष्ठता, साक्षरता, श्रद्धा, विश्वास, भावुकता, समर्पणता, शरणागतता, सर्वथा प्रीत सभर है। संस्कृत समद्रष्टि और अनुभूति स्पर्श से सुनिश्चित और सुयोग्य मार्ग - दिशा से जता रहा हूँ, जिससे "पुष्टि प्रीत सेवा" का माधुर्य आपके चरण मे लूटाता रहूँ, अगर कोई भूल से या कोई रीत से आपके जीव तत्व को ठेश पहुँचे तो मुझे अपना दास समझ कर क्षमा करना।

" सेवायां वा कथायां वा, यस्यासत्तिकर्दढा भवेत ।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतीर्मम " ।।
" श्री वल्लभाचार्य "

भगवत सेवा अथवा भगवत कथा में जिस जीव तत्व की हर घडी, हर साँस, हर विचार और हर क्रिया जीवन भर द्रढासक्ति रहती है, वह जीव तत्व का कभी नाश नहीं होता है, वह जीव तत्व का कुछ भी नष्ट नहीं होता है। जीव तत्व का तनुनवत्व हो कर वह जीव तत्व सुयोग्य दिशा पाकर अपने द्रढ़ निश्चित स्थान पर पहुँचता है। जिस तरह से श्री वल्लभ तृतीय लोक में पहुँचे है। वह जीव तत्व का कुछ भी अर्थात कुछ भी नष्ट नहीं होता है - जीव तत्व का पंच महाभूत तत्व नष्ट नहीं होता है अर्थात सदेह वह जीव तत्व परम मूल तत्व में एकात्म हो जाता है - जैसे भक्त शिरोमणि श्री मीरा बाई, श्री संत तुकाराम, श्री नरसिंह महेता।

ओहह श्री वल्लभ! आप श्री ने अपनी खुद श्री अनुभूति से जो जताया है - जो खुद ने किया है, जो खुद ने अपनाया है, जो खुद ने पाया है, जो खुद ने जिया है, खुद ने परिवर्तन किया है, और खुद ने सार्थक किया है केवल और केवल भक्तिवर्धिनी सेवा से।

सेवा क्या है?
सेवा क्यूँ करें?
सेवा कैसे करें?

जबसे जन्म धारण किया है, हर जीव तत्व कोई न कोई प्रकार से सेवा करता ही रहता है। ब्रह्मांड में, जगत में, सृष्टि में, संसार में, प्रकृति में सेवा की धारा अविरत बहती ही रहती है, पर सेवा को जानने, समझने, पहचानने, सेवा के सिद्धांत, निधि, रीत, पाठ, संस्कृति को कृत कृत करना होगा। हमारे आचार्यो और ऋषिओं ने मनुष्य जीवन की पहचान से सेवा निधि को ऐसा स्वरुप और संस्कृत किया है की हर

आश्रम में, हर अवस्था में, हर कक्षा में, हर परिस्थिति में, हर ज्ञान से, हर भाव से सेवा कर सकते है - इसका अर्थ यह न समझना की कैसे भी रीत से कैसी भी सेवा करे, कैसे भी तरह क्रिया निपटनी। न कोई विचार की मर्यादा, न कोई क्रिया की मर्यादा, न कोई रीत की मर्यादा, न कोई समय की मर्यादा, न कोई शिस्त की मर्यादा, न कोई स्थिति की मर्यादा, न कोई संकल्प की मर्यादा, न कोई मनोरथ की मर्यादा, न कोई आवेश की मर्यादा, न कोई व्यवहार की मर्यादा, न कोई आवेग की मर्यादा, न कोई संस्कार की मर्यादा, न कोई ज्ञान की मर्यादा, न कोई भाव की मर्यादा, न कोई आडंबर की मर्यादा, न कोई अहंकार की मर्यादा, न कोई कक्षा की मर्यादा, न कोई स्थली की मर्यादा, न कोई अंधश्रद्धा की मर्यादा, न कोई सत्ता की मर्यादा, न कोई अपेक्षा की मर्यादा, न कोई जुल्म की मर्यादा, न कोई व्यापार की मर्यादा, न कोई संग्रह की मर्यादा, न कोई मांग की मर्यादा, न कोई मूर्खता की मर्यादा, न कोई बनावट की मर्यादा, न कोई बगावत की मर्यादा, न कोई लूटने की मर्यादा, न कोई हैरान करने की मर्यादा, न कोई लोभाक्ष की मर्यादा, न कोई घुमाने की मर्यादा, न कोई छल ने की मर्यादा, आदि जो भी है यह सर्वे सेवा में नहीं है।

सेवा तो आनंद है।
सेवा तो प्रीत है।
सेवा तो पग डंडी है।
सेवा तो सौंदर्य है।
सेवा तो माधुर्य है।
सेवा तो एकांत है।
सेवा तो एकात्म है।

" आनंदमयो अभ्यासात "
ब्रह्मसूत्रो

" मधुर रस एव मुख्य: , महाविद्या मधु "
" श्री वल्लभाचार्य "

सेवा जानने, सेवा करने, सेवा स्वीकारने, सेवा समझने, सेवा पाने, सेवा पहचानने
हमें विशुद्ध होना है, पवित्र होना है, शांत होना है, योग्य होना है। ये ऐसी असाधारण निधि है जो निधि से सर्वत्र आनंद का ही उत्स होता है, प्रीत का ही प्राकट्य होता है। हमारा बंधारण तन - मन - धन से है। सेवा के लिए तन मन और धन की आवश्यकता रहती है।

तन - शरीर - देह - जो सदा दुर्लभ है। तन को विशुद्ध रखना, पवित्र रखना, शांत रखना और योग्य रखना - ये वर्जित है।

मन - जिससे हम मनुष्य है, मन है तो सबकुछ है, मन को विशुद्ध रखना, मन को पवित्र रखना, मन को स्थिर रखना, मन को शांत रखना, मन को योग्य रखना - ये वर्जित है।

धन - बुद्धि - ज्ञान - भाव - शक्ति - बिना क्रिया न सेवा योग प्रवर्तित। धन का विशुद्ध होना, धन का पवित्र होना, धन का योग्य होना - ये वर्जित है।

तन - मन - धन की विशुद्धता के लिए, पवित्रता के लिए हमारे आचार्यो और ऋषिओं ने एक साक्षर शब्द की रचना की है "अपरस" । अपरस = अप + रस = अपरस। अपरस संस्कृत शब्द है। अप - अव्यय है वह नाम और क्रियापद नहीं है। अप के कितने अर्थ है पर एक अर्थ शुद्ध है। जहां शुद्ध रस का सानिध्य हो, वह है "अपरस" । दूसरा विहांगन ये है की "अस्पर्श" पर हमारी उच्चारण ब्रह्म से ये अपभ्रम हो गया "अपरस" । ये अस्पर्श क्यूँ?

सेवा मे अपरस अर्थात अस्पर्श - ऐसा तो सेवा मे क्या है जो अपरस होना ही है और चाहिए?
अपरस का अर्थ है ज्ञान और भाव को जागृत करना।
अपरस का अर्थ है विशुद्ध होना।
अपरस का अर्थ है पवित्र होना।
अपरस का अर्थ है सत्य होना।
अपरस का अर्थ है अग्नेय होना।
अपरस का अर्थ है प्रीत में समर्पित होना।
अपरस का अर्थ है मानसिक, शारीरिक और आत्मीय से योग्य होना।

मनुष्य जीवन में मनुष्य की कक्षा आधारित मनुष्य की सेवा कर्म निधि और गति होती है। हर मनुष्य की कक्षा आधारित एक संख्या बल अर्थात संख्या जूथ सेवा की रीत या प्रणाली आधारित व्यवस्था होती है। ये कर्म निधि और गति मनुष्य की मानसिक, शारीरिक और आत्मीय चेतना अर्थात ज्ञान, भाव, विशुद्धता, पवित्रता, सत्यता, निर्गुणता, प्रीतता और योग्यता आधारित ही जुड जाती है या व्यवस्थित होती है, ये व्यवस्थितता मनुष्य की आत्मीय बलता उपर ही आधारित है और वह योग्यता में आंतरिक गुण के आधारित सिद्ध होती है।

सेवा निधि और गति में वर्ण व्यवस्था
सेवा निधि और गति में जन्म जाती व्यवस्था
सेवा निधि और गति में आत्मीय ज्ञान व्यवस्था अर्थात साक्षर व्यवस्था
सेवा निधि और गति में भाव अर्थात भक्ति व्यवस्था
सेवा निधि और गति में जीवन चरित्र के साथ जीवन जीने की व्यवस्था
सेवा निधि और गति का महात्मय आधारित मनुष्य की कक्षा की व्यवस्था
सेवा निधि और गति में स्थली और भाषा व्यवस्था
सेवा निधि और गति में वंश व्यवस्था
सेवा निधि और गति में अर्थ व्यवस्था
सेवा निधि और गति में व्यापारिक व्यवस्था
सेवा निधि और गति में शास्त्रोक्त व्यवस्था
सेवा निधि और गति में श्रद्धा और भाव व्यवस्था
सेवा निधि और गति में वैज्ञानिक व्यवस्था
सेवा निधि और गति में संप्रदाय व्यवस्था

“सेवा” हमारी संस्कृति में सेवा शब्द को जो जो प्रकार से अर्थ है - जुडे है। उनमें सेवा शब्द सुनते ही या पढ़ते ही प्राथमिक हम समझते है -
“श्री प्रभु सेवा” - “श्री प्रभु आराधना” - “श्री प्रभु पूजन” - “श्री प्रभु निधि” - “श्री प्रभु कार्य”।
उनके प्रशच्यात समझते है -
कोई दान, कोई तन मन और धन की मदद, कोई योग्य साथ, कोई न्योछावर।
कोई दल या समूह से सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक सेवा - मदद - दान - दक्षिणा - माध्यम।

“सेवा” करने के लिए जो निधि और सिद्धांत संस्कृत किया है, वह हर प्रकार की सेवा में वर्जित है, मूलभूत है, स्पष्ट है, अभय है, सत्य है, योग्य है, श्रेष्ठ है, प्रीत है, स्थिर है, स्थितिप्रज्ञ है।

“सेवा” करने से प्रथम ये आवश्यकता है - सेवा जानना, समझना, पहेचानना, शिक्षित करना, संस्कृत करना और योग्य करना। सेवा की निधि, संस्कृति और माध्यम से ही हम हमारा जीवन घड सकते है, नित्य कर सकते है, मधुर कर सकते है, आनंदमय कर सकते है, शुद्ध कर सकते है, पवित्र कर सकते है, सत्य कर सकते है, योग्य कर सकते है, प्रीत कर सकते है, हर तत्व को एकात्म कर सकते है, जन्म और जीवन को सार्थक और कृतार्थ कर सकते है।

यही सार्थकता और कृतार्थता के परिणमित ही आचार्यो - महर्षिओ - ब्रह्मर्षिओ - तपस्विओ - ऋषिओ - संतो - प्रज्ञानिओ - भक्तों ने जो निधि उत्कृस्ट करके सिद्ध करी - “सेवा”। यह सेवा निधि साधारण - सामान्य और जो कक्षा से हो वह जीव तत्व यह निधि से - रीत से - माध्यम से खुद को संस्कृत कर सकता है। सेवा निधि का बंधारण ही ऐसे कृतकृत्य किया है की हर जीव तत्व खुद को सामर्थ्यवान,

साक्षर, संस्कृत और प्रेमी कर सकता है। इसीलिए आचार्योने सेवा निधि का आचरण सामान्यता से प्रारंभ करके अति सूक्ष्मता से घडतर किया है। ये घडतर में - शिक्षा में शारीरिक - मानसिक - आध्यात्मिक - सामाजिक - धार्मिक - वैज्ञानिक पद्धति से संस्कृत और सुश्रुत किया है। जीवन की हर द्रष्टि - प्रकृति - वृति - श्रुति से किया है। गूढ साक्षारता से माध्यम में परम तत्व परमात्मा को स्थान दिया है। जो सर्वे सृष्टि का कर्ता हर्ता है। जो परम सत्य है। जो परम ईश्वर है। जो परमानंद है। जो परम श्रेष्ठ है। जो मूल है। जो अंशी है। जो सर्वज्ञ है। जो सर्वोतम है। जो सर्वोच्च है। जो साक्षात है। जो परंब्रह्म है।
हम अंश है, हम ब्रह्म है। हम अंशी अर्थात परंब्रह्म की सेवा करेंगे तो हम अवश्य संस्कृत और सार्थक हो सकते है, और यही सत्य है। इसीलिए हम यही अंशी अर्थात परंब्रह्म की सेवा करें तो हम खुद को पहेचान सकते है, सत्य पहेचान सकते है, अंश से अंशी का एकात्म कर सकते है, यही हमारे जन्म और जीवन की सार्थकता है। यही जगत को हम सत्य कहे सकते है, यही संसार को हम पुरुषार्थ कहे सकते है, यही सृष्टि को हम संसृष्टि कहे सकते है, यही प्रकृति को हम स्वीकृति कहे सकते है, यही तत्वों को तनुनवत्व कर सकते है।

वाह! श्री वल्लभ!

"सेवा" सर्वोच्च है, सर्वोतम है, सर्वाधिक है। "सेवा" वात्सल्य है, प्रीत है, विरह है।
"सेवा" अलौकिक है, अखंड स्पर्श है, लौकिक अस्पर्श - अपरस है।

"अपरस" श्री आचार्यो अनुभूत - स्पर्शीय - तादात्मय - एकात्म प्रीत रीत सिद्धांत से अपरस के दो प्रकार है।
अपरस के लिए व्यक्तित्व है - निज - निज कुटुंब - निज समाज - निज प्रजा।

अपरस के लिए स्थली है - निज हवेली - निज मंदिर - निज गृह - निज कस्बो - निज गाँव - निज शहर - निज राज्य - निज देश - निज जगत।

१. खासा अपरस - खासा का अर्थ है - शुद्ध और पवित्र करना और रखना।
२. सेवकी अपरस - सेवक होना, दास होना।

अपरस

खासा अपरस - **सेवकी अपरस**

भीतर अपरस - परचारगी अपरस सेवकी अपरस - शाकघर अपरस - जलघर अपरस

"पुष्टि प्रीत सेवा निधि" में
भीतर की खासा अपरस (आचार्य) (मुख्याजी)
बाहिर की खासा अपरस (परचारगी)
सेवकी अपरस (ख्वास) सेवकी - शाक घर - जल घर

"खासा अपरस" में हर रीत से शुद्ध, पवित्र - तन, मन, धन, और आत्म से शुद्ध - पवित्र होना है। जिससे हर एक विचार, ख्याल और क्रिया शुद्ध, पवित्र और योग्य होगा। हमारी संस्कृति में हम अपने परमात्मा को विशुद्ध, पावित्र्य, और परम श्रेष्ठता से जानते है। यही हमारा विश्वास है, हमारी श्रद्धा है, हमारी निष्ठा है। जो हमारे सर्व श्रेष्ठ आचार्य - श्री गुरु ने अभिभूत किया है। यही हमारा संस्कार है, धर्म है, योग्यता है। यही विश्वास से और निधि से खासा अपरस का प्रकार केवल यही परम श्रेष्ठ परमात्मा के लिए ही हमे खुद को योग्य होना है, यथार्थ करना है। यह खासा अपरस की निधि और सिद्धांत है, यही संस्कार, शिक्षा, और साक्षारता से संस्कृत किया है, कृतार्थ किया है। अर्थात खासा अपरस केवल और केवल श्री परंब्रह्म, श्री परमात्मा, श्री प्रभु, श्री ठाकोरजी की है। ठाकोरजी के लिए ही सर्वथा करना और होना। यह अति गहराई सभर समझ है - यह अपरस सर्व श्रेष्ठ और सर्वोच्च है। सेवा के उपक्रम में यह कक्षा पाना सर्व ज्ञानात्मक और भावात्मक से श्रेष्ठ है। यह खासा अपरस में दो प्रकार है - भीतर की अपरस सेवा और परचारगी अपरस सेवा।

"भीतर की अपरस" के लिए जीव तत्व की कक्षा और लाक्षणिक्ता - गुणातीतता

१. सत्य वचनीय, सत्य कर्तव्यनिष्ठ, सत्य परायण, सत्य आचरणीय होना

२. धर्म सिद्धांतीय, धर्म पालनीय, धर्म रक्षणीय, धर्म आचरणीय, धर्म वेद्य, धर्म संस्कृत्य होना

३. तन - मन - धन और आत्म शुद्धिय, पवित्रय होना

४. कर्म वचनीय, कर्म निष्ठनीय, कर्म ज्ञानीय होना

५. बुद्धि चातुर्य, काल मार्गदर्शनीय, योग क्षेम, योग प्रयोजित्य, योग उज्जवलीय, योग निवारणीय होना

६. दयामय, क्षमामय, दासमय, विवेकमय, माधुर्यमय, प्रीतमय होना

७. भागवत, साक्षर, साधु, सदाचार, सुयोग्य होना

८. निर्लेप, निर्दोष, निर्मोही, निर्लोभी, निरभिमानी, निरंकारी, निष्कपट होना

९. असाधारण,

१०. वैष्णव, ब्राह्मण होना

" आंतरम तु परम फलम, बाह्य अभावे आंतर व्यर्थ अनर्थ हेतु भवति "

" श्री वल्लभाचार्य "

भीतर की अपरस में निज हवेली - निज मंदिर में निज को सर्वथा और सर्वज्ञ होना अति आवश्यक है। यही जीव तत्व अर्थात हमारी पुरुषार्थ स्थली और पुष्टि सिंचन की शिक्षा का मूल है।

निज से निज हवेली - निज मंदिर

निज मंदिर से निज कुटुंब

निज कुटुंब से निज समाज

निज समाज से निज निज कस्बा

निज कस्बा से निज गाँव

निज गाँव से निज शहर

निज शहर से निज राज्य

निज राज्य से निज देश

निज देश से निज जगत

निज जगत से निज ब्रह्मांड

" स्वस्य अयम एव धर्म: न अन्य क्वापि कदाचन "

" श्री वल्लभाचार्य "

यही है पुष्टि मार्ग प्रणाली - यही है पुष्टि मार्ग दर्शन - यही है पुष्टि मार्ग निधि - यही है पुष्टि मार्ग प्रीत रीत जिससे जीव तत्व वैष्णव होता है - ब्राह्मण होता है।

" पुष्टऔ नैव विलंबयेत "

શ્યામ સંગિની
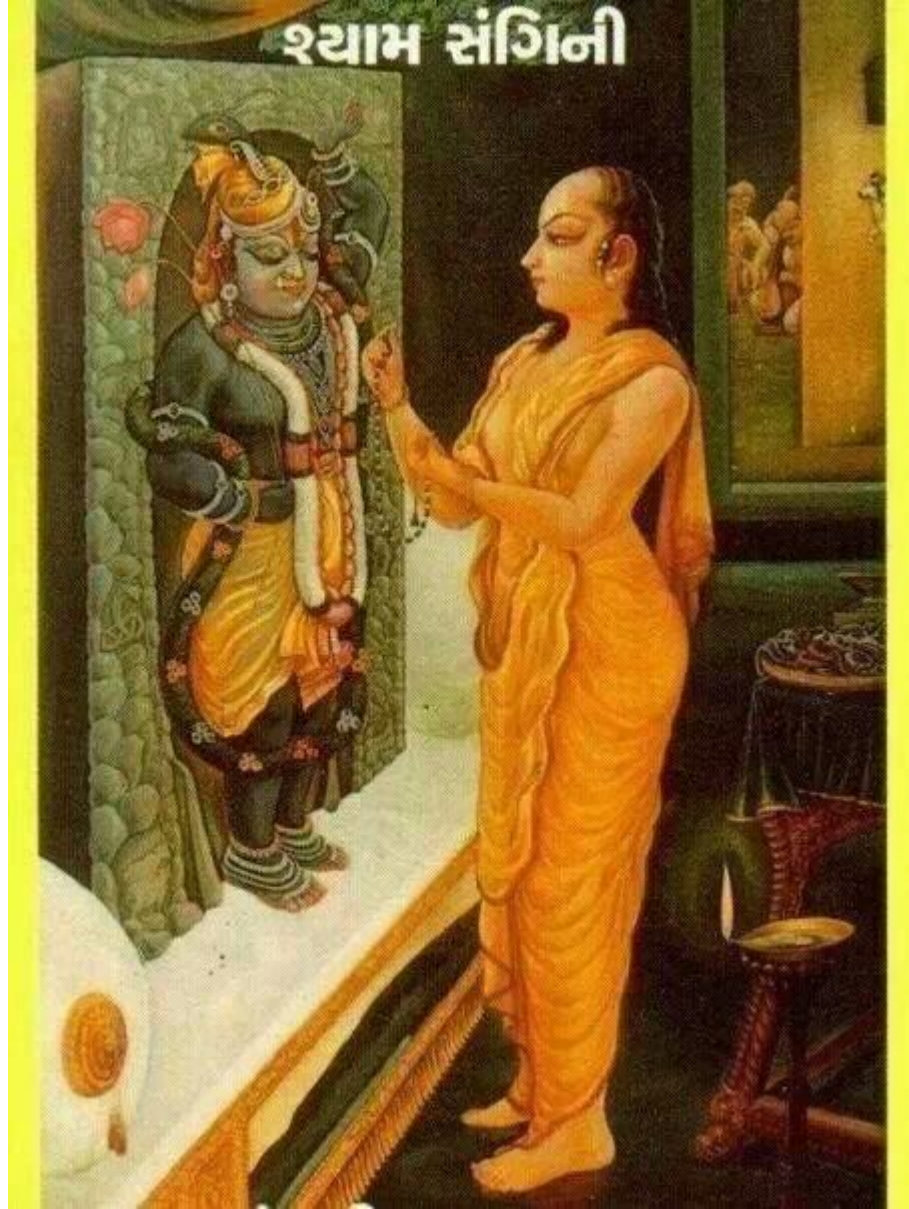
जीव तब ही शुद्ध और पवित्र है जब जीव तन से शुद्ध, मन से शुद्ध, धन से शुद्ध।
तन से शुद्ध - जो जीव अपने तन को जल से स्नान कराके तन के हर अंग को शुद्ध करके तन को उत्सुक करदे, उमंग भरदे, उल्लहास भरदे, उत्कर्ष करदे, आहलादायक करदे, उर्मित करदे, निरोगी करदे, स्वच्छ करदे, स्वस्थ करदे, अथक्निय करदे, नित्य करदे, नूतन करदे, तादात्मय करदे, रसमय करदे, विरहग्नेय करदे, आकर्षक करदे, सौंदर्य भरदे, श्रृंगार करदे, माधुर्य भरदे, संवेदन करदे, शौर्य भरदे, प्रीत भरदे, सुगंध भरदे, संगीत भरदे, रंग भरदे, आँचल सजादे, नर्तन भरदे, हास्य भरदे, संस्कार भरदे, अर्चित करदे, सुश्रुत करदे, परिश्रमित करदे, रोमांचित करदे, सेवक करदे, विनम्र करदे, विनयी करदे, विजयी करदे, दोषमुक्त करदे, वात्सल्य भरदे, सुयोग्य करदे, तनुनवत्व करदे।

जीव के तन को जल से शुद्ध करना - जल ऐसा क्या है? जो तन को शुद्ध करें! वैज्ञानिक परिणामित से जल तत्व की रचना हुई है H2O - H अर्थात Hydrogen - जो सूर्य है - जो यह ब्रहमांड में पूर्णता से Hydrogen तत्व से भरा है वह समूह - सूर्य। H तत्व का दो अणु समूह परमाणु नहीं और एक Oxygen तत्व वायु तत्व है, Oxygen तत्व का एक अणु समूह परमाणु नहीं जिसके मिश्रण से जल होता है। सूर्य - विशुद्ध है, Oxygen वायु तत्व विशुद्ध है। दोनों का योग्य मिश्रण केवल शुद्धि ही परिणमित है। तो उनके मिश्रित स्पर्श से जो तत्व स्पर्श पायेगा वह तत्व में शुद्धि ही प्रज्वल्लित होगी, शुद्धि ही प्रदान होगी। हम अनुभवते है सूर्य के किरण से और Oxygen वायु के तत्व का साँस लेने से हमें आंतरिक और बाहय शुद्धि मिलती है। इसीलिए तो हमारी संस्कृति में स्नान का महात्मय है।

जल एक ऐसा तत्व है, जो तत्व से उनसे मिश्रित - उनसे स्पर्श - उनके बास्प से जो जो परिवर्तन आते है, वह परिवर्तन में सकारात्मक परिणाम की मात्रा अति रहती है। सकारात्मक का उत्स, सकारात्मक का लय, सकारात्मक का भास, सकारात्मक का रस, सकारात्मक का स्पंदन, सकारात्मक का रंग, सकारात्मक की सुगंध, सकारात्मक का माधुर्य, सकारात्मक का संस्कार, सकारात्मक का अशोक, सकारात्मक का संगीत, सकारात्मक का श्रृंगार, सकारात्मक का उमंग, सकारात्मक का आनंद, सकारात्मक का निरोग, सकारात्मक का प्रेम, सकारात्मक का अथकन करता है, सकारात्मक की उतेजना का उत्स करता है। तन से चिपकी हुई - तन से लिपटी हुई कहीं अशुद्धियाँ को दूर करती है। तन के रोम रोम में ऐसी संवेदना भर देती है जो रोम रोम उत्सुक हो जाते है - उत्तेजित हो जाते है - स्वच्छ और स्वस्थ हो जाते है - शुद्ध हो जाते है - उर्मित हो जाते है। जल के छिडकाव से मिट्टी, वायु अपनी रज और बास्प को अपनी लहर को स्थिर और रसमय करने से जो सकारात्मक स्पंदन हममें उत्स हुए है अर्थात होते है, उन्हे भी स्थिर और शुद्ध कर देता है। जिससे वातावरण सुनिश्चित, शांत और सकारात्मक स्पंदन से सभर रहता है। जल से कहीं उड़ते अशुद्ध रज, वायु नकारात्मक स्पंदन आदि अपने निकट और अपना स्पर्श नहीं पाते है। जिससे अपने में उत्स हुए सकारात्मक स्पंदन जो हमने स्नान किए पाया है, जो हमने संकल्प करके जगाया है, जो हमने साध्य करके सांधा है उनमें न विक्षेप होता है - न परिवर्तन करता है - न बंधन करता है। जल से आसुरी स्पंदन - शक्ति - सिद्धि का नष्ट होता है। जल से कहीं तत्व एक रस होते है - एकाकार होते है - परिवर्तन होते है - दूर होते है। यह एक रस - एकाकार - परिवर्तन और दूर होना ही हमारे शुद्ध और पवित्र तत्व को अधिक तेजोमय - उल्लासमय - निर्मल करता है। यह तेज - उल्लास -

निर्मलता हमारे तन को सुयोग्य - संस्कारमय - संस्कृत - सुंदर करता है। इसलिए स्नान और हमारी आसपास की स्थली और जगह - वातावरण पर जल का छिटकाव आवश्यक है - जो हमें अस्पर्शीय रखते है - शुद्ध रखते है। यही है अपरस का माहत्मय - अपरस की योग्यता - अपरस की सुनिश्चितता - अपरस की सुद्र्ड्ता - अपरस की पवित्रता - अपरस की शुद्धता है।

अपरस से मन से शुद्ध - अस्पर्श से मन विशुद्ध

कितनी गहरी रीत है!
कितनी गहरी समझ है!
कितनी गहरी ऊंचाई है!
कितना गूढ ज्ञान है!
कितना गूढ भाव है!
कितना गूढ रहस्य है!

हमने हमारा मन - हमारा संकल्प - हमारा विचार - हमारे तरंग - हमारे स्पंदन को जिस तरह से जानना है, समझना है, पहचानना है, शिक्षित करना है, संस्कृत करना है, एकाग्र करना है, स्थिर करना है, शांत करना है, मधुर करना है, योग्य करना है तो अपरस - अस्पर्श में रहना है - अपरस - अस्पर्श रखना है। यह इतना गहरा और सर्वोत्तम सिंचन है - चिंतन है जो मन को और जीवन को सुयोग्य ही करता है। हमारा जगत - संसार और जीवन कहीं विचार - तरंग और स्पंदन से भरा है - उठता है - उगता है - उत्सता है - जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक तत्वों का उदभवना पंच महाभूत तत्वों की मात्रा पर निर्भित है। जिससे मन की रचना संभवित है। यह मन को शुद्ध करना और होना वह जीव तत्व पर आधारित है। मन से ही हम मनुष्य है, मन से ही हम मानव है, मन नहीं तो नहीं मनुष्य - मन नहीं तो नहीं मानव। तो हमें मन को जानना, समझना, पहचानना और मन से खुद को योग्य करना और रखना! मन से करनी - मन से ही भरनी - मन से ही तरनी। मन की रचना - मन की योग्यता - मन की शुद्धता - मन की पवित्रता - मन की स्थिरता - मन की मुक्तता - मन की मधुरता - मन की एकात्मता - मन का मिलन - मन - मन - मन - मन!

“अपरस” मन की शुद्धता के लिए एक माध्यम है। “सेवा” मे मन की शुद्धता अति आवश्यक है, मन की शुद्धता के लिए “सेवा” अति योग्य निधि है। मन की शुद्धता के लिए आवश्यक है संस्कार - शिक्षा - संस्कृति - धर्म और प्रकृति। मन योग्य वह जीव तत्व ब्रहमांड का सर्वज्ञ - सर्वोच्च - सर्वोत्तम - सर्व श्रेष्ठ मनुष्य।
जिसका मन योग्य - न उन्हे भौतिकता के कोई भी माध्यम की जरूरत होती है।
जिसका मन मधुर वह प्रिये होता है। मन शुद्ध करने मन को योग्य संस्कार से सिंचित करना है। योग्य संस्कार हर मनुष्य को जन्म से ही शिक्षित करना है। श्री वल्लभाचार्यजी का प्राकट्य समझना ही एक अलौकिक द्रष्टांत है - जो हमें योग्य शिक्षित कर सकता है। हमारे पास ऐसे कितने चरित्र है जो जन्म से

ही हमें संस्कार सिंचन करके हमारे मन को शुद्ध और संस्कृत कर सकते है। हमारे माता-पिता, आचार्य, गुरुजी, कुटुंब, मित्र यह सर्वे हमारे मन को योग्य करने के साथी है। जीवन का हर विचार - हर व्यवहार - हर क्रिया - हर कक्षा - हर गति मन से ही है। मनुष्य वो ही है जिन्हें शुद्ध मन को रचना आता है। जगत के हर जीव अपने पुरुषार्थ से मन को शुद्ध और पवित्र और स्थितिप्रज्ञ करता है, यही मन से ही उनकी कक्षा सिद्ध होती है। मुनि, महर्षि, माननीय, श्री मन, मंदोदर, मनमित, मानसी, मन मन्स्का, ऐसे कहीं है केवल मन से। मन को शुद्ध करने तो संबंध है, मन को संस्कृत करने तो शिक्षा है, मन को पवित्र करने तो धर्म है, मन को स्थिर करने तो तपश्चर्या है, मन को मधुर करने तो प्रीत है, मन से योग्य जीवन के लिए तो संसार है, मन से माधुर्य करने के लिए तो प्रकृति है, मन से सिद्ध करने के लिए तो जगत है। मन से महात्मा होने के लिए तो ब्रहमांड है।

“अपरस” से मन की मानसिकता - साक्षरता - शुद्धता - पवित्रता और योग्यता का बल मिलता है। “अपरस” का अर्थ अस्पर्शनीय से उत्तम है एकाग्रता - एकात्मता - एकाकार - एकांत - एकरस - एकरूप - एकचित - एक अर्थात खुद को जानना, समझना, पहचानना, पाना, और समाना। मन की शुद्धि के लिए ही अपरस और अपरस से आचरण और आचरण से सेवा और सेवा से संस्कृतता और संस्कृतता से साक्षरता और साक्षरता से साधना और साधना से साकारता और साकारता से निराकारता।

वाह! सेवा वाह!
वाह! अपरस वाह!

“अपरस” से तन और मन शुद्ध - पवित्र अर्थात तन की रचना और मन की रचना का आधर्य मुख्य है। तन का बंधारण - तन की रचना - जो चक्रो से है - जो इंद्रियों से है - जो पंच महाभूत तत्वों से है - जो प्रकृति से है - जो मन से है - जो कर्म से है।

मन का बंधारण - मन की रचना - जो विचार से है - जो मान्यता से है - जो संस्कार से है - जो संस्कृति है - जो सृष्टि से है - जो प्रकृति से है - जो धर्म से - जो कर्म से है।
अर्थात तन और मन दोनों साधन है और यही साधन सेवा मे सर्वोत्तम है - सर्वोच्च है - सर्वाधिक है। यही दोनों साधन को सेवा मे योग्यता पूर्वक - श्रेष्ठ शिक्षित - संस्कार सिंचित और धर्म परायणीत करके उपयोग और उपभोग करे तो सेवा सामर्थ्य - सायुज्य - सामीप्य - माधुर्य और सार्थक होती है।
तन का अपरस - मन का अपरस अति आवश्यक है सेवा में, तन शुद्धि से मन शुद्धि से सेवा में आनंद के स्पंदन उर्मित होते है, आनंद की पुष्टि प्रकट होती है, आनंद की ऊर्जा उत्कंठित होती है। तन का अपरस तन से करना है - तन का अपरस मन से करना है, ऐसे ही मन का अपरस मन से करना है - मन का अपरस तन से करना है। द्रष्टि - स्वर - श्वास - स्पर्श और विचार से अपरस का अर्थ है द्रष्टि - स्वर - श्वास - स्पर्श और विचार को पुष्ट करना अर्थात माधुर्य करना अर्थात तनुनवत्व करना अर्थात "गोपित्व” करना।

“अपरस” में मन के लिए एकाग्रता - स्थिरता - सरलता और प्रफुल्लता अति आवश्यक है। मन से सदा विशुद्ध विचार धारा, योग्य आयोजन - समय सूचकता - सदा जागृतता - सदा स्मरण - योग्य चिंतन - अलौकिक सेवक ज्ञान भाव - श्रेष्ठ समझ - निसंदेह वृति - निष्कपट रीति - निराभिमान - निर्मल - निर्दोष - निर्गुण - निवृत - समांतर आदर - न आवेश न ध्वेश - न क्रोध न अरुचि - संघ प्रतिष्ठा - परस्पर समान सेवक गुण - सलामत सैद्धांतिक पुष्टि प्रीत रीत मुख्यत्व है।
“अपरस” में तन के लिए समद्रष्टि - मृदुस्वर - विनम्र सत्य वचन - विवेक शुद्ध आज्ञा - जल - संस्कार विधि वस्त्र - सुमिश्रित सामग्री - सुआयोजित स्वच्छता - वर्गीय और वर्णीय कक्षा व्यवस्था - अचल माध्यमता - न आवेश न ध्वेश - दासत्व - सर्वथा मुख्यत्व है।

अदभूत! अलौकिक! आत्मीय! माधुर्य! प्रिय!

“बाहिर की खासा अपरस” अपरस के प्रकार में जो हमने “भीतर की खासा अपरस” अर्थात निज अपरस है, पर जो बाहिर की अपरस है जो हम कोई सेवक को हमारी निजता में जोड़े - कोई सेवक को हमारी सेवा में जोड़े। वह सेवक परचारगी है। जो सेवक को बाहिर की ही सेवाकीय जिम्मेदारी और साथ निभानी होती है।

सेवा जो निज साध्य है पर वह साध्य संघ से ही सिद्ध होता है। ब्रह्मांड - सृष्टि - जगत - प्रकृति - संसार को अनुशंधित करलो! हर क्षण यही द्रष्टि पायेंगे।

यही तो सेवा की अखंडता है!
यही तो सेवा का माधुर्य है!
यही तो सेवा की प्रीत है!
यही तो सेवा का सत्य है!

हम समझते ही है की निज में सदा सर्व का साथ है। निज में सदा सर्व की एकात्मता है। निज में सदा प्रीत की ज्ञानात्मकता है। निज में सदा सुरक्षित भावनात्मक है। निज की पहचान समन्वय से ही होती है। यह कुटुंब, यह ज्ञाति, यह समाज, यह विस्तार, यह कस्बा, यह गाँव, यह शहर, यह राज्य, यह देश, यह जगत, यह ब्रह्मांड का सत्य ही यही है -

निजता से सर्व में एकात्मता!
निजता से सर्व में अखंडता!
निजता से सर्व में माधुर्य!
निजता से सर्व में प्रीत!
निजता से सर्व में आनंद!
निजता से सर्व में सत्य!

हर अपरस में शुद्धता की अति आवश्यकता है। क्यूंकी शुद्धता से ही सर्वथा योग्यता का प्राकट्य होता है। अपरस में स्नान, वस्त्र, और तन मन की लाक्षणिक्ता मुख्य है। स्नान तन का पर मन की निर्मलता से करना है। वस्त्र तन का आँचल हो कर मन की शुद्धता से पहनना है। तन मन को ऐसे कर्मिष्ठ करना है जो सदा शुद्ध और स्थिर रहे। पता नहीं यह तन और मन पर ऐसी तो क्या और कैसी अशुद्धि और अज्ञानता छूती है, प्रवेशती है, उदभवति है, उत्स होती है, उठती है, जागती है? कैसे विचार, आचार, व्यवहार, संस्कार, और क्रिया, स्पर्श, रीत हम करते है और अपनाते है की हमें सदा अशुद्धि और अज्ञानता से निकलना ही रहता है - होता है। ब्रह्मांड - सृष्टि - जगत - प्रकृति - संसार परिवर्तन का नियम है पर हर परिवर्तन में शुद्धता और पवित्रता की अखंडता और योग्यता क्यूँ नहीं? नाश विनाश तो होना ही है - शुद्ध - विशुद्ध होते होते संपूर्ण योग्यता पा कर जन्म और जीवन परमानंद क्यूँ न हो?

यह बाहिर की खासा अपरस में जो जो व्यक्तित्व आचार्य - मुख्याजी से जुडने वाले है वह व्यक्तित्व हर प्रकार के साथ और क्रिया से जुड़े है - वह साथ और क्रिया सेवा हेतुकीय है - जिसमें जो मुख्य सेवा के आचार्य - मुख्याजी के साथ जुडने वाले चोक्कस गिनत क्रिया के चोक्कस गिनत व्यक्तित्व। यह साथी व्यक्तित्व को परचारगी कहते है। जो हर क्रिया के साथी की ज़िम्मेदारी से उनका नाम होता है। यह परचारगी को भी आचार्य - मुख्याजी की तरह ही तन मन धन और आत्म से शुद्ध और पवित्र होना है और रहना है। उनकी क्रिया भी उतनी ही सर्वोच्च और सर्वोत्तम है जितनी आचार्य - मुख्याजी की है। उन्हें भी स्नान - वस्त्र - और तन मन की लाक्षणिक्ता मुख्य है।

आचार्य - मुख्याजी - मुख्य सेवा

परचारगी - क्रिया संबधित सेवा

परचारगी के सेवक - ख्वास - क्रिया संबधित सेवा

परचारगी अर्थात साथी कौन है?

जो परचारगी सदा हमारी नित्य सेवा में रहें।
जो परचारगी सदा शुद्ध और पवित्र रहें।
जो परचारगी सदा समय सूचक रहें।
जो परचारगी हमें नित्य जागृत और योग्य रखें।
जो परचारगी शिस्त, संयम और नियम में हमारी साथ रहें।
जो परचारगी सदा निष्ठा, विश्वास और निर्दोषता से हर व्यवहार करें।
जो परचारगी सदा पुष्टि में रहें।
जो परचारगी सदा गोपि प्रीत में रहें।

“ पुष्टि सेवा प्रीत से हर आतम में जागती जाय
हर सेवक दास हो घर घर गोपि वल्लभ ध्याय
पुष्टि प्रीत सेवा का मूल
विचार द्रष्टि कर्म से ब्रहंसबंध एकात्म पाय ”

भीतर की अपरस
श्री प्रभु आनंद - श्री प्रभु सुख - श्री प्रभु प्रीत सेवा नित्य धरनी
श्री प्रभु नित्य सेवा पहुचानी - करनी - करानी
सदा श्री प्रभु सेवा - श्री प्रभु चरित्र के चिंतन और स्मरण में रहना
सदा दीनता में रहना, सदा अहंता से डरना, सदा विनम्रता से झुकना
न अहंकार - न अधूरप - न आवेश - न ममता - न व्यापार धरना
न अभिमान - न आदि - न अपेक्षा - न इच्छा - न वासना रखना
न संदेह - न मान - न अपमान - न प्रतिष्ठा - न कपट - न अधर्म अपनाना
हर साँस - हर स्वर - हर विचार - हर क्रिया - हर द्रष्टि सदा सन्मुख धरना
हर रीत - हर नीति - हर निधि - हर प्रकृति - हर पुष्टि न्योछावर करना
हर शृंगार - हर शमा - हर आरती - हर भोग - हर भाव - हर ज्ञान लूटाना
हर उत्सव - हर मनोरथ - हर दर्शन - हर यात्रा - हर परिक्रमा - हर लीला में डूबना
हर जप - हर पाठ - हर धून - हर कीर्तन - हर धोल - हर पद हरि शरण पुकारना
हर भगवत कथा - हर चरित्र - हर संगीत - हर गीत - हर स्मरण हरि गुण ध्याना

सेवा प्रीत ऐसी जगाना जो न कदी प्रकट हो भाव ज्ञान - जो मैं जानत - जो मैं अनुभवत - जो मैं ही पुरानों - जो मैं सही करत - जो मैं ही मुख्य - जो मैं ही आज्ञा करत - जो मैं योग्य शिखावत
निवृत प्रवृत ही सत्य मार्ग दर्शन - सत्य सूचक - सत्य दर्शक - सत्य शिक्षात्मक - सत्य सर्जक
न उच्च - न उत्तम - न सर्व से उत्तम - न सर्व से अधिक - न सर्व से बडा - न सर्व से छोटा
यही योग्य रीत है पुष्टि सेवा प्रीत की - जो खुद को उजाले - औरन को उजाले - उजले सर्व एक
न झूठ - न छल - न कष्ट - न दाम - न साम - न भेद - न भरम - न मोहित - न क्रोधित होत
न कुटिल - न अनजान - न नौकर - न मालिक - न आश्रित - न सर्वोपरी होत
मन शुद्धि - तन शुद्धि ही पुष्टि प्रीत जगायों - बढ़ायों - संवार्यो - अपनायों - दर्शायों - मिलायों - पायों
निज प्रसन्ता - श्री प्रभु प्रसन्ता - निज सुखता - श्री प्रभु सुखता - निज आनंद - श्री प्रभु परमानंद
विचार विवेक - द्रष्टि विवेक - उच्चार विवेक - क्रिया विवेक - काल विवेक - धन विवेक - आचरण विवेक
उत्सव विवेक - मनोरथ विवेक - सेवक विवेक - व्यवहार विवेक - भाव विवेक - ज्ञान विवेक
वर्ण प्रथा का सर्व श्रेष्ठ ख्याल धरना और रखना है, अर्थात जो व्यक्ति उनके विचार, आचार, साक्षर, आहार, ज्ञान, भाव से सर्व श्रेष्ठ हो वह व्यक्ति योग्य, शुद्ध और पवित्र है।

आंतर - भीतर के है ये स्पर्श अपरस के जो सदा निभाये दास बनके
यही है पुष्टि प्रीत सेवा की पहचान

बाहिर की खासा अपरस की लाक्षणिक्ता में जो भी व्यक्ति है, उन्हें इतना रखना ही है की आज जो भी कक्षा पर हूँ वह कक्षा सदा के लिए नहीं है, उन्हें भी खुद को योग्य करके मुख्याजी की गति तक पहुँचना है। इसके लिए उन्हें सदा अभ्यास - शिक्षा और योग्यता संपादन और सिंचन करना है, इसीलिए उन्हें सदा आचार्य - मुख्याजी का सानिध्य में रहना और हर सूक्ष्म समझ - रीत - ज्ञान - सिद्धांत - भाव समझना अति आवश्यक है। यही तो योग्य प्रणाली है पुष्टि प्रीत सेवा निधि की, अगर कोई परचारगी और खवास खुद को योग्य करना नहीं समझता है तो यह पुष्टि प्रीत सेवा निधि का खंडन है, अयोग्य है, अराजकता है, मूर्खता है, अशुद्धता है, अन्याय है, अनघड़ता है, अबुध है, अज्ञान है, अपमान है। आजकल जो पद्धती चल रही है, उनके जिम्मेदार हम है और हमारे अयोग्य और अधूरप - अज्ञानी - स्वछंद जो खुद को संप्रदाय के रखवाले और कुल शिरोमणि मानते है वो है।

जो परचारगी और खवास वह अपने मुख्याजी की तरह ही खुद को तन मन धन और आत्मा से शुद्ध और पवित्र रहना है, साथ साथ उन्हें मुख्याजी और आचार्यजी की भी अति आवश्यक सेवा की योग्यता - महात्मयता - सैद्धांतिकता का ख्याल भी रखना है। उन्हें आचार्यजी - मुख्याजी की हर वस्तुत्व, हर रीत, हर वस्त्र, हर आभूषण, हर सामग्री और हर अपेक्षित व्यवहार और व्यवस्था का ध्यान और ज्ञान रखना है। जितनी भीतर अपरस में शुद्ध और पवित्र है उतने ही बाहिर अपरस में भी शुद्ध और पवित्र रहना है और रखना है। यही तो उच्चता है यह परचारगी माध्यम सेवक साथी की। उन्हें हर आंतरिक और बाहिर व्यवस्था में आचार्यजी - मुख्याजी के हर पहलू का - रहठाण, नित्य कर्म, भोजन, आयोजन, प्रयोजन और व्यवहार में सदा साथ मार्गसूचक रहना है।

परचारगी को सेवा गृह, आश्रम, बैठक, गृह, पाठशाला, गौशाला, सामग्री भंडार, जल गृह, दूध घर, शाक घर, फूल घर, वस्त्र घर, शृंगार गृह, सजावट गृह, यज्ञ खंड, पार्थना सभा खंड, सत्संग खंड, चिकित्सा गृह, औषध गृह, पुस्तकालय आदि कहीं आश्रय और हेतुकीय स्थली को योग्य, शुद्ध, पवित्र करनी और रखनी है। अगर सूक्ष्मता से भी कुछ छू जाय तो अपरस का महात्मय नहीं रहता है।
यही उच्चता समझनी है हमें - हमारा गृह - आश्रम भी यही रीत से ही है और जो भी कुटुंब में साथ साथ रहते है, उनमें जो मुख्य है वह मुख्याजी ही है और जो साथी है वह परचारगी है। यही तो गृहस्थाश्रम की योग्यता और सार्थक्ता है। हमारे गृहस्थाश्रम के मुख्याजी को हमें विश्वास और निष्ठा पूर्वक हमें हर प्रकार और रीत से तन मन धन से शुद्ध और पवित्र रहना ही और रखना ही हमारी सेवा है - यही हमारा अपरस है। न तो कोई अशुद्धि आयेगी, अज्ञान आयेगा, अपवित्र छायेगा - केवल शुद्ध और पवित्र हमारा तन मन धन और आश्रय।

पुष्टि जन तो रहीये साथ साथ अपरस
पुष्टि वैष्णव होहीये साथ साथ सेवारस
हर श्वास से पाये पुष्टि सिद्धांत
हर उच्छवास से जगाये पुष्टि प्राण
हर बूँद भने पुष्टि प्रीत रस
हर रज ठने पुष्टि व्रज रज
वैष्णव जन सोहावीये जन जन पुष्टि संबंध
पुष्टि जन से रचे गोकुल गोवर्धन वृंदावन
सदा परिक्रमा ध्यायिए जन्म जीवन गोपाल
गोप गोपि सो होयीए खेलें पुष्टि रास रसाल

बाहिर की अपरस

यही रीत यही कृत - ऐसे ही शुद्धता - ऐसे ही पवित्रता स्नान करके, वस्त्र पहनके। केवल साथ होना और साथ निभाना सर्वथा से हर रीत में परचारगी - जल लाना, दूध लाना, सामग्री लाना, सखड़ी अनसखड़ी पकाना, व्यवस्था करना, नींव की तरह स्थिर होना। बाहिर की हर अशुद्धि को शुद्धि और पवित्र करके हर तत्व को अपनी ओर खीचके संकेत करना, प्रेरणा देना, जागृत करना, संकल्प जगाना, याद करना, राह दिखाना। कहीं अधिक रीत से मर्यादा में स्नान, वस्त्र, धातु पात्र, जल, सामग्री, सखड़ी अन सखड़ी, और कहीं आंतरिक व्यवस्था से सभान रहना है। वर्ण प्रथा का अचूक ख्याल रखना होता है, अर्थात जो व्यक्ति सास्वत विचार, आचार और अन्न का उपयोग करता हो वह योग्य कुल का व्यक्ति है। यह व्यक्ति हर गति, रीत और निधि से उच्च व्यक्ति है।

मनुष्य जीवन में साँस

मनुष्य जीवन में द्रष्टि

मनुष्य जीवन में स्वर (जब सुनते है - जब कहते है)

मनुष्य जीवन में अक्षर

मनुष्य जीवन में विचार

मनुष्य जीवन में सुगंध

मनुष्य जीवन में स्पर्श

मनुष्य जीवन में रस

मनुष्य जीवन मे संस्कार

मनुष्य जीवन में तत्व - (अन्न - रज)

कितना योग्य है - आवश्यक है - सार्थक है - साक्षर है - सर्वोच्च है - सर्वोत्तम है - सर्वाधिक है - सविशेष है - सुप्रमाण है - कृतज्ञ है - सर्वज्ञ है।

अर्थात - जो पंचमहाभूत है अग्नि - आकाश - जल - वायु - धरती इनके हर गुणधर्म से शुद्ध और पवित्र रह कर हर कर्म करना ही अपरस में रहना है और पुष्टि प्रीत सेवा करना है। कितना ख्याल और जागृत रहना - खुद को योग्य करना ही पुरुषार्थ है - जीवन है, यही पुरुषार्थ और जीवन के संयोजन से प्रीत को प्रकट करके कर्म करना भक्ति है यही भक्ति से ही परम अंश अर्थात परमात्मा हमारे आत्मा से एकात्म होते है।

वाह! अपरस वाह!

बाहिर की अपरस का यही महत्व है।

श्री वल्लभाचार्यजी की अति सूक्ष्म दीर्घ द्रष्टि है।

सेवा में न कोई बड़ो न कोई छोटो!

"जय श्री कृष्ण"

रोम रोम से शुद्ध,
रज रज शुद्ध,
बूँद बूँद से शुद्ध,
साँस साँस से शुद्ध,
अक्षर अक्षर से शुद्ध,
स्वर स्वर से शुद्ध,
विचार विचार से शुद्ध,
स्पर्श स्पर्श से शुद्ध,
एक शुद्ध सर्व शुद्ध।

न कहीं जूठन, न कहीं अनाचार, न कोई संदेह, न कोई भेद, न कोई दोष, न कोई प्रदोष, न कोई अज्ञान, न कोई अभिमान, न कोई अहंकार, न कोई संहार, न कोई ममता, न कोई अहंता, न कोई चाह, न कोई वाह, न कोई मान, न कोई अपमान, न कोई राग, न कोई ध्वेश, न कोई आश, न कोई भास, न कोई फरियाद, न कोई मोह, न कोई लोभ, न कोई स्वार्थ, न कोई व्यथार्थ, न कोई दंड, न कोई बंड, न कोई छूत, न कोई अछूत, न कोई रोग, न कोई भोग, न कोई इच्छा, न कोई घेलछा, न कोई द्वैत, न कोई वेर। सर्वथा समर्पण सर्वथा सेवा।
कहीं अंदर जाना - कहीं बाहर जाना, कहीं गर्भ गृह पहुँचना - कहीं गृह बाहर धरना, कहीं आश्रय स्थली रुकना - कहीं आश्रय स्थली ठहरना, कहीं कुछ करना - कहीं कुछ विचरना, केवल एक ही नित - शुद्ध, विशुद्ध, संस्कार, सहकार, पवित्र, स्वतंत्र। केवल अद्वैत।

वाह मेरे वल्लभ! वाह मेरे वल्लभ!

भीतर की अपरस		**बाहिर की अपरस**
आचार्यजी - मुख्याजी		**परचारगी**
अवश्य करना	**स्नान**	**अवश्य करना**
मुगुट पहनना - पीतांबर पहनना	**वस्त्र**	**सफ़ेद सूत पहनना**
श्रीप्रभु की सेवा, शृंगार, सेवा सखड़ी अन सखड़ी, पात्र, साधन,	**सामग्री**	**जल, दूध, शाक, पान, फूल, मेवा, सखड़ी, पात्र, साधन, अन सखड़ी**
न कभी बाहर निकालना		**सदा बाहर ही रहना**
हर रीत से मर्यादा		**हर रीत से मर्यादा के साथ**
हर रीत से बाधक		**कहीं अधिक रीत से बाधक**
हर नीति से सेवा		**हर कृति से सेवा**
हर पुष्टि से सेवा		**हर पुष्टि में सेवा**
हर निधि से सेवा		**हर निधि में सेवा**
दास धर्म		**दास्य धर्म**

श्री प्रभु को बिना श्रम संभालना	**हर तत्व - जीव तत्व को बिना श्रम संभालना**
न खुद को अपराध पड़े	**न खुद को और न किसिकों अपराध पड़े**
न रोग भोग, न आधी व्याधि, न सुख दुःख	**न रोग भोग, न आधी व्याधि, न सुख दुःख**
न वेर वासना, न उंच निंच, न भेद भरम	**न वेर वासना, न उंच निंच, न भेद भरम**
प्रमेय बल से श्री प्रभु को सुख देना	**दास्य सेवा बल से अपने आचार्य - मुख्याजी को सुख देना**
न अवेर, न अधूरपता, न यंत्रता, न अराजकता	**न अवेर, न अधूरपता, न यंत्रता, न अराजकता**
न अपेक्षा सह भांति भांति मनोरथ	**केवल सेवक समर्पण कर्म**
केवल ज्ञान प्रीत भाव समर्पण	**केवल दास्य प्रीत सेवा भाव**
न कोई शास्त्र, न कोई सूची, न कोई प्रदर्शन	**न कोई पद्धति, न कोई रीति रिवाज, न कोई दिखावा**
सदा विवेक, सदा नतमस्तक, सदा विनम्र	**सदा संयम - नियम, सदा निर्मोह - निरंकार, निस्वार्थ**
ऋतु अनुसार सेवा, वस्त्र, शृंगार, सामाग्री, लीला	**ऋतु अनुसार व्यवस्था**
संपूर्ण वात्सल्यता	**पूर्ण दास्यता**
सहानुभाव से सेवा	**स्वामी आज्ञांकित सेवा**

“सेवकी अपरस” जो सेवक है। यह ब्रह्मांड में, यह सृष्टि में - यह जगत में, यह प्रकृति में - यह संसार में सेवक कौन?

हर एक तत्व सेवक है केवल कक्षा भिन्न भिन्न है। अर्थात हर एक सेवक है - हर जीव तत्व सेवक है। श्री आचार्यो अपनी ज्ञान - भक्ति अनुभूति से हर निधि, रीति, पध्ध्ती, नीति, गति, संस्कार, शिक्षण, सत्संग, दिशा और मार्ग से हर एक तत्व - जीव तत्व को अवगत, सिंचित, और जागृत करते है और करते रहते है। शास्त्र - संप्रदाय - रीतरिवाज के बंधारण से हर एक तत्व - जीव तत्व को संस्कृत करते है। हर एक तत्व - जीव तत्व खुद को यही सर्व कृति - प्रवृति - वृति - प्रकृति से घडते घडते कहीं योग्यता प्राप्त - सिद्ध करके खुद को कक्षा के कहीं पथ, कहीं पगथिए पर पहुँच कर उनके साथ रहते तत्व - जीव तत्व को प्रेरणा, संकेत, शिक्षा, और स्पर्श करके उत्कृष्ट करते है। यही तो संसार का, जन्म का, जीवन का पुरुषार्थ है। इसीलिए हर तत्व - जीव तत्व सेवक है। हर एक तत्व - जीव तत्व को सदा एक दूजे के साथ ही रहना है - जीना है।

“सेवकी अपरस” ब्रह्मांड में रहना है, सृष्टि में जीना है, जगत में बसना है, प्रकृति में पकना है और संसार में पुरुषार्थना है तो सेवक है। सर्वे के साथ सर्वे की योग्यता सर्व शुद्ध और पवित्र निधि से अपने को होना है - रखना है - करना है। यही है सेवकी अपरस! इसीलिए तो भक्त शिरोमणि शुद्ध और पवित्र परम आत्मीय - परम भगवदीय श्री नरसिंह महेता हर साँस से, हर द्रष्टि से, हर स्वर से, हर अक्षर से, हर विचार से, हर सुगंध से, हर स्पर्श से, हर रस से, हर संस्कार से, हर तत्व से जताया

" जय श्री कृष्ण "

" वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ परायी जाणे रे ।
परदु:खे उपकार करे तोये मन अभिमान ना आणे रे ।।
सकळ लोक मा सहुने वंदे नींदा न करे केनी रे ।
वाच काछ मन निश्चळ राखे धन धन जननी तेनी रे ।।
सम द्रष्टिने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य ना बोले पर धन नव झाली हाथ रे ।।
मोह माया व्यापे नही जेने द्रढ वैराग्य जेना मन मा रे ।
राम नाम सुन ताळी लागी सकळ तिरथ तेना तन मा रे ।।
वण लोभी ने कपट रहित छे काम क्रोध निवार्या रे ।
भणे नरसैय्यो तेनु दर्शन कर्ता कुळ एकोतेर तारया रे ।।
वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ परायी जाणे रे । "

अदभूत! अति अदभूत! यही है आचार्य - यही है संत - यही है भक्त - यही है वैष्णव - यही है सेवक
यही है शुद्ध - यही है पवित्र - यही है पुष्टि - यही है पुष्टि प्रीत निधि सेवा

सेवकी अपरस में सेवक आचार्य - मुख्याजी और उनके साथ जुड़े हुए परचारगी के लिए हर रीत से सेवाकिय क्रिया में रहना है। सेवक भी परचारगी की तरह ही अपरस के हर सिद्धांत से शुद्ध और पवित्र रहना है और सेवाकिय रीत से जुड़ना है। अपरस के हर सिद्धांत अपनाकर उन्हें परचारगी को सेवा की क्रिया में साथ निभाना है। सेवक की लाक्षणिक्ता में जल से लेकर हर प्रकार की सामग्री और मथनी से लेकर समाधान तक और हर प्रकार की व्यवस्था से लेकर आचार्य - मुख्याजी के रात्रि शयन तक कार्य रत रहना है। सेवक ब्रह्ममुहर्त से पहले और रात्रि आखरी शयन तक हर सेवा में अचल - विनय - विवेक - शुद्ध - पवित्र - समय मर्यादित रहना है। सेवक एक सर्वोत्तम माध्यम है आचार्य से लेकर आखरी तत्व - जीव तत्व से लेकर जुड़ता ही रहता है और शुद्ध - पवित्र - संस्कारी और आत्मीय ज्ञान भक्ति के मधुर पाँच रस जताता और जगाता रहता है। यही ही उच्च प्रक्रिया है सेवक की जो सर्वे के साथ सदा शुद्धि और पवित्रता का सिंचन और योग्यता प्रस्थापित करना। उन्हें ख्याल और ज्ञान रखना ही है की मेरे साथ जो आचार्य - मुख्याजी और परचारगी है वह सर्वे परम पुरषोत्तम की सेवा और सानिध्य में है और जो जो तत्व - जीव तत्व बाहरी स्वरूप से आते है वह भी ऐसे तत्व - जीव तत्व है जो परम अंशी के अंश ही है, उन्हें भी पुष्टि प्रीत सेवा निधि से सिंचित करके योग्य गति करनी है।

सेवक की मर्यादा
सेवक को केवल परचारगी और जो जीव तत्व सेवा में पधारते है उनका ही ख्याल रखना है।
सेवक को बाहरी पधारे जीव तत्व को आचार्य - मुख्याजी और भीतर की शुद्धता और पवित्रता का ख्याल रख कर हर जीव तत्व को पुष्टि प्रीत सेवा निधि का संकेत - ज्ञान - भाव को जागृत कर के सेवा निधि की मर्यादा में रखना है। जिससे पुष्टि प्रीत सेवा की अखंड माधुर्यता सनमानित और योग्यता उत्कृष्ट रहती है।

सेवक को स्नान - वस्त्र - जल सेवा - सामग्री - मथनी - कुल्ला व्यवस्था को शुद्ध और पवित्र रखना है।
सेवक को पधारे जीव तत्व को हाथ धुवावने - प्रसाद समाधान - जल पान - बाहरी व्यवस्था रखना है।
सेवक को भीतर की अपरस व्यवस्था का सूक्ष्मता से ख्याल रख कर बाहरी जीव तत्वों और खुद को मुख्य अपरस की मर्यादा से अचल, सनमानित रहना है।
सेवक को बाहरी अपरस अर्थात - प्रसादी जल ठलावे - भरावे, जो हाथ धुवावे - जो जल पान करावे - जो जीव तत्व को समाधान करावे - जो मथनी के लिए कुल्ला करने काम आवे।
सेवक को भेटिया सेवक अर्थात हर प्रकार की बाहरी सेवाकीय कार्यकारी सेवक के लिए हर प्रकार का समाधान कराए।
बाहरी अपरस के हर साधन अर्थात जो जो भी बाहरी सेवाकीय कार्यकारी सेवक और जीव तत्व की व्यवस्था के लिए उपयोग में आए वह साधन अलग से होना और रखना अति आवश्यक है।
बाहरी अपरस में हर विनियोग बाहरी से प्रबंध होता है - जैसे भेट, सामग्री, भोग, साधन, शृंगार, दान, सेवा, मनोरथ, उत्सव आदि।

कितना अलौकिक और कितनी विशुद्ध समझ है अपरस की, अपरस हमारा सिद्धांत है और उन्हें निभाना हमारी संस्कृति है। हमारी भीतर और हमारी बाहर हम अपरस के सिद्धांत अपनाये तो हम सदा आनंद में रहेंगे - आनंद में जियेंगे, परमानंद पायेंगे।
जन्म और जीवन, ब्रह्म और ब्रह्मांड, जीव और जगत, सृष्टि और प्रकृति, संसार और संस्कृति, देह और प्राण, मन और मंदिर, आत्म और परमात्मा सर्वे भीतर और बाहरी अपरस के आवरण से रचे है। तत्व को हर अपरस का सूक्ष्मता से ख्याल और नियमन करने से तत्व सदा तनुनवत्व परिवर्तन करते करते परम तत्व को पाता है।

पुष्टिमार्गीय हवेली - बैठकजी - धाम - स्थली ये सिद्धांत का सर्व श्रेष्ठ द्रष्टांत है।

आप सर्वे को विदित करदे की यह जो विश्लेषण - आश्लेषण और चिंतन है, यह विशुद्ध आध्यात्मिक आचार्यो, महर्षिओ, दासजन्यों, वैष्णवतत्वों, संत तत्वों, भक्त तत्वों, ज्ञान तत्वों और प्रीत तत्वों स्पर्शनीय है। यह कोई संप्रदाय आधारित और संप्रदाय सैद्धांतिक नहीं है, यह तो हर जीव तत्व के लिए है जो यह सृष्टि पर जन्मा है। हम जितनी शुद्धता से और योग्यता से जो कुछ भी करेंगे इतने परमानंदित हम रचते जाएँगे, होते जाएँगे। यही तो सार्थकता और पुरुषार्थकता के लिए ही हम है।

श्री वल्लभ-विजयते
જય શ્રીકૃષ્ણ